धर्म संकट

अमृतलाल नागर

हिन्दी ADDA

धर्म संकट

शाम का समय था, हम लोग प्रदेश, देश और विश्व की राजनीति पर लंबी चर्चा करने के बाद उस विषय से ऊब चुके थे। चाय बड़े मौके से आई, लेकिन उस ताजगी का

सुख हम ठीक तरह से उठा भी न पाए थे कि नौकर ने आकर एक सादा बंद लिफाफा मेरे हाथ में रख दिया। मैंने खोलकर देखा, सामनेवाले पड़ोसी रायबहादुर गिर्राजकिशन (गिरिराज कृष्ण) का पत्र था, काँपते हाथों अनमिल अक्षरों और टेढ़ी पंक्तियों में लिखा था :

माई डियर प्रताप,

"मैंने फुल्ली को आदेश दे रक्खा है कि मेरी मृत्यु के बाद यह पत्र तुम्हें फौरन पहुँचाया जाए। तुम मेरे अभिन्न मित्र के पुत्र हो। रमेश से अधिक सदा आज्ञाकारी रहे हो। मेरी निम्नलिखित तीन अंतिम इच्छाओं को पूरा करना - "

1. रमेश को तुरंत सूचना देना। मेरी आत्मा को तभी शांति मिलेगी, जब उसके हाथों मेरे अंतिम संस्कार होंगे। मैंने उसके साथ अन्याय किया है।

2. फुल्ली को मैंने पाँच हजार रुपये दिए हैं और पाँच-पाँच सौ रुपये बाकी चारों नौकरों को। नोट मेरे तकिए में रूई की परत के अंदर हैं। उसी में वसीयत और तिजोरी की चाभी भी है। घर में किसी को यह रहस्य नहीं मालूम। तकिया अब फौरन अपने कब्जे में कर लेना। घर के भंडार-घर और संदूकों की चाभियाँ तिजोरी में हैं। रमेश के आने पर पाँच पंचों के सामने उसे सौंप देना।

3. मैंने अपनी वसीयत में यह शर्त रक्खी है कि मेरी पत्नी अगर मुझे माफ कर दे और गलत ही सही, मगर जो पतिव्रत उस पर आन पड़ा है उसे साधकर, रमेश को छोड़कर, बाइज्जत यहाँ रहे तो यह मकान और दस हजार रुपया उसे दिया जाए लेकिन यह काम उसी हालत में होना चाहिए, जबकि हम और तुम्हारे द्वारा नियुक्त मुहल्ले के चार भले आदमी मेरी पत्नी की सच्चरित्रता के संबंध में आवश्स्त हो जाएँ।

पत्र पर छह रोज पहले की तारीख पड़ी थी। मुझे यह समझने में देर न लगी कि रायबहादुर साहब गत हो चुके हैं। पत्र मैंने बड़े बाबू के सामने मेज पर रखा दिया। इंजीनियर साहब और प्रोफेसर साहब भी झुककर पढ़ने लगे।

चाय बेमजा हो गई। हम सभी उठकर रायबहादुर साहब के यहाँ गए। उनका रोबीला चेहरा रोग और मानसिक चिंताओं से जर्जर होकर मृत्यु के बाद भी उनके अंतिम दिनों के असीम कष्टों का परिचय दे रहा था। मृत रायबहादुर के चेहरे को देखते हुए उनके साथ बीते इतने वर्षों की स्मृतियाँ मेरे मन में जाग उठीं।

रायबहादुर बाबू गिर्राजकिशन बी.ए. उन हिंदुस्तानियों में से थे, जिन्हें तकदीर की चूक के कारण इंग्लैंड में जन्म नहीं मिल पाया था। उनका रंग भी गोरा न था, बल्कि गेहुएँ से काले की ओर ही अधिक झुकता हुआ था। फिर भरसक उन्होंने अपने-आपको अंग्रेजनुमा ही बनाए रक्खा। गरीब हिंदुस्तानियों पर अकड़ दिखाने में वे सदा अंग्रेजों से चार जूते आगे रहे। कई हिंदीवादियों ने उनसे शुद्ध नाम गिरिराजकृष्ण रखने को कहा, मगर वे उन्हें मूर्ख बतलाकर गिर्राज ही बने रहे। रायबहादुर गिर्राजकिशन के नाम के साथ बी.ए. जोड़ना भी नितांत आवश्यक था। सन 23 में रायबहादुर गिर्राज अपनी बिरादरी के रायसाहेब दीनानाथ की बदौलत इलाहाबाद में छोटे लाट के दफ्तर में भरती हुए थे। अपनी अंग्रेजपरस्ती और हाईक्लास खुशामद के दम पर रामबहादुर ऊँची कुर्सियों पर चढ़ बैठे। स्वराज्य होने पर आंतरिक कष्ट भोगने के बावजूद तीन वर्षों तक स्वराजी अफसरों, नेताओं और मंत्रियों की भी बाअदब खुशामद की। गिर्राज बाबू इन लोगों के सामने जिस प्रकार खुद दुम हिलाते उसी प्रकार अपने सामने अपने मातहतों की भी हिलवाते थे। आजादी के बाद भी दफ्तर में अपना भला चाहनेवाला कोई बाबू उनके आगे हिंदी का एक शब्द नहीं बोल सकता था और घर के लिए भी यही मशहूर था कि रायबहादुर की भैंस तक अंग्रेजी में ही डकारती। अगर कोई कसर थी तो सही कि 'लेडी गिर्राज' के वास्ते अंग्रेजी का करिया अक्षर भी भैंस बराबर ही था।

रायबहादुर गिर्राज पहली लड़ाई के जमाने के मॉडर्न आदमी थे। सुबह आँख खुलते ही घंटी बजाते, सफदे कोट, पतलून और साफे से लैस फुल्ली आया का लड़का घसीटे 'छोटी हाजिरी' लेकर हाजिर होता। ठीक आठ बजे बड़ी हाजिरी पर बैठते, बेटी-बेटा साथ होते, पर लेडी गिर्राज अंडा-बिस्कुट-समाज में कभी न बैठीं। परम कट्टर छूत-पाकवाली न होते हुए भी मांस-मछली से उन्हें परहेज था। बशीरत चपरासी के बाप मुन्ने बावर्ची को हफ्ते में दो दिन ड्यूटी देनी पड़ती थी। घर के निचले हिस्से में विलायती रसोई थी। एक तरह से कहना चाहिए कि नीचे का पूरा घर ही विलायती था। वहाँ लेडी गिर्राज के बजाय फुल्ली आया का साम्राज्य था। फुल्ली पहले अंग्रेजी कोठियों में काम करती थी। अंग्रेजी ढंग से हिंदुस्थानी बोलती है। अंग्रेजी घर के कायदे जानती है। छोटी-बड़ी हाजिरी, लंच, डिनर, चाय सबका समय साधती थी, इसलिए गिर्राज बाबू के बाबू नियम से दो पेग खाने से पहले चुसकियों में मर्यादा करते थे। फुल्ली उसका इंतजाम भी बखूबी कर देती थी। इसलिए आमतौर पर मजाक-मजाक में ही मशहूर हो गया था कि रायबहादुर साहब से कोई काम करवाने के वास्ते बजाय लेडी गिर्राज के लेडी फुल्ली की सिफारिश ज्यादह पुरअसर होती है।

वैसे राजबहादुर गिर्राज में किसी ने भी कोई ऐब की बात नहीं देखी-सुनी थी, अगर ऐब था तो यही कि वे मॉडर्न थे। चुरुट मुँह में लगाए बगैर वे बात नहीं कर पाते थे। अगर कोई हिंदी सभा का चंदा माँगने आए तो उससे अकड़कर कहते कि मॉडर्न जमाने में गँवारू भाषाओं का उद्धार करना हिमाकत की बात है। धर्म के संबंध में पहले तो वे यह कहा करते थे कि यह ढोंग और पागलपन की वस्तु है, मगर बाद में उसे इंडियन कल्चर का एक सनातन रूप मानकर सहन कर जाते थे। गिर्राज साहब थोड़ा-बहुत लेने-देने का काम करते थे और उसकी बदौलत उन्होंने हैसियत भी बनाई। अच्छा मॉडर्न ढंग का मकान बनवाया। उसका नाम 'दि नाइटिंगेल' रक्खा। मोटर खरीदी। सदा दो-चार नौकर पाले। घर से लेकर दफ्तर तक घड़ी साधकर सबसे ड्यूटी करवाई। पत्नी को भी मिलने के वास्ते फुल्ली के द्वारा उनसे 'अप्वाइंटमेंट' लेना पड़ता था। लेडी इससे जल-फुँक गई कि मैं फुल्ली से भी गई-बीती हो गई।

लेडी गिर्राज ने अपने फूहड़पन में उनके ऊपर एक बहुत बड़ा लांछन लगा दिया। रायबहादुर साहब सिद्धांततः और स्वभावतः अवैध रिश्तों से नफरत करते थे, इसलिए अपनी पत्नी के द्वारा झूठा लांछन लगाए जाने के बाद फिर उन्होंने कभी उनका मुँह न देखा। बड़ी लड़की के विवाह के अवसर पर उन्होंने कन्यादान इसलिए स्वयं न किया कि उन्हें पूजा के पटरे पर अपनी पत्नी के साथ बैठना पड़ता।

इसके बाद दो वर्ष में लेडी गिर्राज घुल-घुलकर मर गईं; मगर मरीं भी तो नियति के साथ षड्यंत्र करके ठीक इनके रिटायर होने के दिन। रायबहादुर गिर्राज को बहुत शिकायत हुई; अपने बेटे-बेटी से कहा, "तुम्हारी मम्मी को कभी टाइम का सेंस नहीं रहा। अगर मरना ही था तो कल सुबह मरतीं, परसों सुबह मर सकती थीं। आज शाम को दफ्तर में मेरी फेयरवेल पार्टी हो जाने के बाद कभी मर सकती थीं। जिंदगी में एड्रेस पाने का यह पहला मौका आया था सो इस तरह तबाहोबर्बाद कर दिया। ईडियट कहीं की!"

इसके बाद, मरनेवाली तो खैर, मर ही चुकी थी मगर जो भी मातम-पुरसी के लिए मुँह बिसूरते हुए आए, उन्हें भी रायबहादुर साहब की डाँट खानी पड़ी। जो कहता कि साहब सुनकर बड़ा दुख हुआ, उससे ही कहते, "आपको दुख करने की जरूरत क्या है? मुझे कोई दुख नहीं हुआ। जो आदमी पैदा होता हैं, उन सबको एक साथ फौरन मर जाना चाहिए। जाइए, मेरे यहाँ मातम-पुरसी के लिए आने की जरूरत नहीं।"

छोटी लड़की की शादी उन्होंने पत्नी की मृत्यु के तीन महीने बाद पूर्व निश्चय के अनुसार ही की। स्वयं ब्याहनेवाली लड़की और उनके पुत्र को इसमें आपत्ति थी, मगर

उन्होंने किसी की एक न सुनी, कहा, "आई हैव नो रिगार्ड फॉर योर मम्मी। शी वाज एक परफेक्ट फूल !" लड़की की शादी बड़ी धूमधाम से की। एक आई.सी.एस. के बेटे को अपना दामाद बनाया और बहुत कुछ दान-दहेज देकर रिटायर होने के बाद भी रोब जतलाया।

लड़का रमेश तब एम.ए. फाइनल में पढ़ रहा था। नामी तेज था; सदा फर्स्ट क्लास रेकार्ड रहा। एम.ए. के बाद आई.ए.एस. में बैठनेवाला था। लड़कीवाले अनेक व्यक्ति रमेश की माँग करने के लिए रायबहादुर की सेवा में आने लगे। रायबहादुर गिर्राज को अब मातहत क्लर्कों पर न सही तो बेटीवालों पर ही चुरुट का रोब झाड़कर भरपूर संतोष मिल जाता था। दहेज के मामले में वे पक्के मॉडर्न थे यानी पच्चीस हजार माँगते थे। एकाध पिछले जानकार ने दुहाई दी कि आप तो दहेज के विरुद्ध थे, उसको पुरानी प्रथा बतलाते थे तो बोले, "साहब, जब मुझ से बड़े अफसर, आई.सी.एस. आदमी, यानी मेरे समधी साहब, दहेज लेने को मॉडर्न प्रथा मानते हैं तो मैंने भी अपने विचार बदल दिए हैं। निहायत साइंटिफिक बात है कि आपको दामाद चाहिए और मुझे 25 हजार रुपया। मेरा रमेश आई.ए.एस. पास करेगा। आप अपनी लड़की का फ्यूचर देखकर अगर इतनी रक्कम देना स्वीकार करते हैं तो बैठिए, वरना मेरी कुरसी की गद्दी मैली मत किजिए।"

वे ऐसी लड़की चाहते थे, जो सुंदर हो, बी.ए. हो, गाती नाचती हो, सीना-पिरोना-बुनना जानती हो, अंग्रेजी में फटाफट बात करें। अफसर किस्म के मॉडर्न मेहमानों की खातिर करने में तमीजदार हो और ऊपर से उसका बाप नगद पच्चीस हजार रुपये भी दे जाए। बिरादरी के कई अच्छी हैसियतवाले बेटियों के बापों के चेहरे रायबहादुर गिर्राज के चुरुट की अकड़ से धुआँ-छुआँ हो गए।

एक दिन इनके द्वारा नौकर रखाए गए पुराने मातहत एक सजातीय बाबू देवीशंकर पधारे गिर्राज की महिमाओं का बखान करते हुए उन्होंने कहा, "सर, मैं आपकी च्वायस को जानता हूँ और एक लड़की मेरी नजर में है।"

इन बाबू के साथ उन्होंने रीता को देखने का अवसर पाया। रीता रायसाहब चमनलाल की इकलौती बेटी थी। रायसाहब चमनलाल ने अपने जमाने में बड़े ऐश, बड़े नाम किए। वे शहर की तवायफों के सरताज थे, रेस के घोड़ों के सरपस्त थे और बड़े ही औला-पौला आदमी थे। अपने जीवन-काल में लाखों कमाए और लाखों फूँके। एक लड़की हुई, उसे बड़े लाड़ से पाला-पोसा, पढ़ाया। हाई स्कूल तक रीता ने परीक्षाओं तथा वाद-विवाद और नृत्य-प्रतियोगिताओं में अनेक पुरस्कार प्राप्त कर अपने पिता

को संतुष्ट किया था। रायसाहब विधुर थे, रीता की एक विधवा मौसी उनकी लड़की की देखभाल करने के लिए उनके यहाँ रहती थी, सो तब तरह से उनकी ही हो गई थी। रायसाहब ने आँख मूँदकर अपना घर अपनी रक्षिता साली को सौंप रक्खा था।

बाद में रायसाहब चमनलाल की जन्मकुंडली के ग्रह-नक्षत्र पहटे, बड़ा घाटा आया। दिवालिए होने की नौबत आ गई। अपनी लड़की के वास्ते कुछ रकम बचाने की नीयत से उन्होंने एक बँगला अपनी साली के नाम से खरीदा और लगभग एक लाख रुपया नगद और जेवरों के रूप में बचाकर उसी के नाम से जमा करवा दिया। फिर रायसाहब दिवालिए हो गए और जिस दिन उन्हें अपनी महलनुमा कोठी सदा के लिए छोड़नी थी, उस दिन उन्होंने गहरे नशे में अपनी कनपटी पर रिवाल्वर रखकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। रायसाहब की मृत्यु के बाद मौसी सयानी हो गई और रीता अनाथ।

लड़की देखने गए तो उसकी दो चोटियों में तितलियों जैसे रिबन देखकर रायबहादुर साहब के पेशन प्राप्त जीवन में नई रस की गुलाबी आई। अनेक वर्षों का सोया हुआ मॉडर्न पत्नी का अभाव जाग उठा। लड़की रीता बातचीत में तेंज, आँखें नचाने में बाकमल और हँसने में बिजली थी। देखकर लौटे तो रास्ते में देवीशंकर से बोले, "लड़की तो अच्छी है और दहेज का भी मुझे कोई खास नहीं, क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि मैं इन सब मामलों में बड़ा मॉडर्न हूँ। खाली एक प्रयोजन हैं के - अ - क्या नाम के, आई मीन, तुम्हारा क्या खयाल है, देवीशंकर, अभी तो मैं भी शादी कर सकता हूँ?"

देवीशंकर रायबहादुर को घूरते लगे। मुँह पर खुशामद से 'हाँ' के बजाय 'ना' भला क्यों कर कहते। मौसी के लिए इससे बढ़कर काई शुभ संवाद न हो सकता था। अठारह वर्ष की आयु की रीता छप्पन वर्षीय रायबहादुर गिर्राजकिशन की पत्नी बनी।

और इसके बाद की तमाम बातें अपने क्रम में बढ़ गईं। रीता ने प्रथम दिन से ही अपने पति से कोई संबंध न रक्खा। हठपूर्वक अपने कमरे के अंदर बंद रही। रायबहादुर रुपये-पैसे, गहनों और खुशामदों की बड़ी-बड़ी नुमायशें लगाकर हार गए। फिर एक दिन फुल्ली ने बतलाया कि रमेश और रीता रायबहादुर द्वारा स्थापित संबंध को भूलकर परस्पर नया संबंध स्थापित कर रहे हैं। रायबहादुर आग हो गए। रमेश तब एम.ए. के अंतिम वर्ष में पढ़ रहा था। पिता ने क्रोध में अंध होकर उस पर प्रहार किया और घर से निकाल दिया। रीता तब भी उनकी न हुई।

रमेश को दो महीने बाद ही दिल्ली में कोई नौकरी मिल गई और उसके महीने-भर बाद ही रीता रायबहादुर के घर से गायब होकर दिल्ली पहुँच गई। जाने से पूर्व वह एक

अलबेला काम कर गई थी। मुहल्ले के पच्चास घरों में हर पते पर उनका लिखा पोस्टकार्ड उसके गायब होने के दूसरे ही दिन पहली डाक से पहुँचा। उसमें मात्र इतना ही लिखा था : "बाबू गिरिराजकृष्ण ने मुझे जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाया था, मगर मैंने उन्हें कभी अपना पति न माना और न अपना धर्म ही दिया। विवाह से पहले मुझे बतलाया गया कि मैं उनके पुत्र को ब्याही जाऊँगी। तब से मैंने उनके पुत्र को ही अपना पति माना; इस घर में आकर भी उन्हें ही भगवान की साक्षी में अपने को सौंपा और अब मैं अपने पति के पास ही जा रही हूँ।"

रीता के भागने से रायबहादुर बाबू गिर्राजकिशन को इतना कष्ट नहीं पहुँचा था, जितना कि उसके द्वारा भेजे गए इस सार्वजनिक पत्र से वे दुखी हुए। इसके बाद रायबहादुर का जीवन बदल गया। उनमें पूजा-पाठ और आस्तिकता की भावना जागी, साथ ही अकेलापन भी हठ पकड़ गया। पिछले आठ वर्षों में वे एक दिन भी अपने घर से बाहर निकलकर कहीं न गए। लेन-देन का काम करते थे, वह भी धीरे-धीरे समाप्त कर दिया। मुहल्ले में किसी से भी संपर्क न रक्खा। पिछले कुछ दिनों से बीमार थे, मगर मुहल्लेवाले उनकी हालत देखने-पूछने भी न गए, जाते तो मिलते भी नहीं और अचानक मेरे पास अब यह पत्र आया।

हम सभी मुहल्लेवाले एकाएक यह निर्णय न कर पाए कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए। वैद्यजी और बड़े बाबू इस पक्ष में थे कि पुलिस को सूचना दे दी जाए और इस पत्र को लिखी हुई बातों का अमल भी कानून के हाथों ही हो, परंतु मैं तो मृत व्यक्ति की अंतिम इच्छा पूरी करने के पक्ष में था। रायबहादुर कैसे भी रहे हों, इसी मुहल्ले के थे। कइयों को उन्होंने कभी नौकरियाँ भी दिलाई थीं, उपकार किया था। इंजीनियर साहब भी मेरे ही मत के थे। बाद में सभी राजी हो गए। मुहल्ले के एक मित्र के पास रमेश के पत्र आया करते थे। उसी से पता लेकर तार भेजा गया, जिसमें यह स्पष्ट लिख दिया था कि यदि कल प्रातःकाल तक तुम स्वयं अथवा तुम्हारा पत्र उत्तर न आएगा तो रायबहादुर की अंत्योष्टि क्रिया मुहल्लेवालों द्वारा ही पंचनामें से संपन्न कर दी जाएगी।

सुबह चार बजे तार का जवाब आया कि रमेश टैक्सी द्वारा दिल्ली से चल रहा है और सुबह तक पहुँच जाएगा। प्रातःकाल करीब-करीब सभी मुहल्लेवाले रायबहादुर के घर पर उपस्थित थे, तभी टैक्सी दरवाजे पर रुकी। रमेश, रीता और तीन बच्चे उतरे। रमेश के मुँह पर तो सामाजिक लज्जा और संकोच की मलिन छाया थी, परंतु रीता का चेहरा सतेज और निर्विकार था।

रीता के आने का संवाद पाकर अनेक स्त्रियाँ कौतूहलवश आ गईं। रीता ने रायबहादुर की लाश के पास अपनी चूड़ियाँ तोड़ीं और माँग का सिंदूर पोंछा। रमेश ने पिता का अंतिम संस्कार किया। स्त्रियाँ रीता से तरह-तरह के प्रश्न करती थीं, परंतु वह कोई उत्तर न देती थी। क्रियाकर्म इत्यादि में रायबहादुर के सजातीय, नाते-रिश्तेदार आदि बहुत कम आए। ब्रह्मभोज में गरीबी से एकदम टूटे हुए ब्राह्मण ही आए। किसी प्रकार क्रियाकर्म समाप्त हुआ। रमेश के वहाँ से चलने का समय आया।

मैंने रायबहादुर के अंतिम पत्र के अनुसार संभ्रांत मुहल्लेवालों के साथ रीता-रमेश को बुलाकर सबके सामने उनका वह अंतिम पत्र पढ़ा और वह तकिया, जो मुहरबंद पेटी में मैंने रखवा दिया था, खुलवाया। फुल्ली और नौकरों को रायबहादुर की इच्छानुसार रुपये दे दिए गए। रायबहादुर की अंतिम माँग पर रीता का निर्णय सुनने के लिए हम सभी उत्सुक बैठे थे। रीता बोली, "मैं धर्म और ईश्वर के सम्मुख सच्चरित्र हूँ। मैंने अपने तन-मन से उन्हें सदा ससुर ही माना। धार्मिक कानून की जिस मजबूरी से उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया था, उसे मैंने विधिवत उनकी लाश को सौंप भी दिया। उनकी चूड़ियाँ, उनका सिंदूर उन्हें सौंपा, लेकिन मेरी चूड़ियाँ, मेरा सिंदूर अक्षय है।" कहकर उसने देर से अपने हाथ के नीचे दबी हुई रूमाल की पोटली को उठाया, उसमें हरी चूड़ियाँ थीं और एक चाँदी की डिबिया थी। चूड़ियाँ पहनीं और डिबीया खोलकर रमेश की और रखते हुए बोली, "जिन्होंने मेरी गोद भरी है, उन्होंने मेरी माँग भी भरी है - लीजिए मेरी माँग भर दीजिए।"

रमेश ने रीता की माँग में सिंदूर की रेखा खींच दी। फिर रीता बोली, "घर के संबंध में मुझे केवल यही कहना है कि अगर आप पाँच पंच मुझे दुश्चरित्र मानते हों तो उसे धर्मशाला बना दीजिए।"

हममें से कोई खम ठोंककर एकाएक यह नहीं कह पाया कि रीता दुश्चरित्र है। मैंने अनुभव किया कि सभी के मनों को इस प्रश्न से धक्का लगा था। अपने परंपरागत धार्मिक, सामाजिक संस्कारों के कारण हम रीता को सचरित्रा मानने से भी मन ही मन हिचकते थे, पर यों क्या कहें।

रीता हमारी हिचक पर एक बार कहकर उठ गई। उसने कहा, "मुझे रायबहादुर साहब का घर और दस हजार रुपये पाने की इच्छा नहीं। मेरे पति ने मुझे सुहाग की छाँव दे रक्खी है। लेकिन मैं आपके सामने कसौटी रखती हूँ - बोलिए घर किसका है?"

घर को छोड़कर बाकी सब सामान के साथ रमेश, रीता और उनके बच्चे दिल्ली चले गए। हम अभी तक कोई निर्णय नहीं कर पाए। घर की चाभी मेरे पास है। वह तोले डेढ़ का लोहे का टुकड़ा इस समय मेरे मन-प्राणों का बोझ बना हुआ है।